

## भक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में तुलसी की मानवीय चेतना

पूजा प्रसाद

एम. फिल. शोध-छात्रा, कलकत्ता विश्वविद्यालय

Email - pujaprasad069@gmail.com

हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप भक्तिकाल का सूत्रपात हुआ था और लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गईं। उत्तरी भारत में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक फैली भक्ति की लहर समाज के वर्ण, जाति, कुल और धर्म की सीमाएँ लांघ कर सारे जनमानस की चेतना में परिव्याप्त हो गई थी, जिसने जन-आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया था। भक्ति आन्दोलन का एक पक्ष जहाँ भगवान के साथ मिलन का पक्षधर था वहीं दूसरा पक्ष समाज में व्याप्त असमानता, ऊँच-नीच की भावना, एक वर्ण, एक जाति या धर्म के लोगों का दूसरे वर्ण व जाति धर्म के प्रति किये गए अत्याचार, अन्याय के विरोध का पक्षधर है।

भक्ति आंदोलन पर विभिन्न विद्वानों ने अपने कई आलोचनाएँ प्रस्तुत की हैं। साहित्य के इतिहास के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भक्ति-आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, जिसमें मुख्य रूप से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ. रामविलास शर्मा आदि इतिहासकारों, आलोचकों ने उक्त विषय सम्मत अपने विचार प्रकट किए हैं।

भक्ति आंदोलन के विश्लेषण को लेकर विद्वत समाज में सदैव से मतभेद रहा है। एक पक्ष भक्ति आंदोलन को धार्मिक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में सामने लाता है, तो दूसरा पक्ष उसके आर्थिक-राजनीतिक कारणों को आधार मानता है। प्रमुख धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक कारणों को ध्यान में रखकर प्रथमतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा भक्ति आंदोलन विषयक विचार समीचीन प्रतीत होता है। उन्होंने भक्ति के आविर्भाव का कारण "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। . . . आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब . . .। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"<sup>1</sup> स्वीकार किया है।

शुक्ल के पश्चात आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति आंदोलन को व्याख्यायित करते हुए कहा कि "इसका कारण उस काल की लोक प्रवृत्ति का शास्त्र सिद्ध आचार्यों और पौराणिक ठोस कल्पनाओं से युक्त हो जाना है।"<sup>2</sup> भक्ति की भावना भारतवर्ष के लोक जीवन में अनादिकाल से प्रवाहमान है और समय-समय पर उसके विभिन्न रूप प्रकट होते रहे हैं। जिस काल खण्ड को भक्तिकाल कहा जाता है, उसमें लोक शास्त्र का प्रबल अंतर्द्वन्द्व उभरा जिसके कारण हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्तिकाल के मुख्य अंतर्विरोध का कारण लोक और शास्त्र का द्वन्द्व मानते हैं। यह स्पष्ट है कि भक्तिकाल में 'लोक' का स्थान शास्त्र से ऊपर हो चुका था।

भक्ति आंदोलन जो मूलतः धर्म के आवरण में जनता की सामाजिक अस्मिता के सवाल को प्रधान रूप में सामने लाने का प्रयत्न किया। इस बात की पुष्टि करते हुए श्री दामोदरन लिखते हैं - "भक्ति आंदोलन का मूल आधार भगवान विष्णु अथवा उनके अवतारों, राम और कृष्ण की भक्ति थी। किंतु यह शुद्धतः एक धार्मिक आंदोलन नहीं था। वैष्णवों के सिद्धांत मूलतः उस समय व्याप्त सामाजिक आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थी। सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया। सामाजिक विषयवस्तु में वे जाति-प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे। इस

आंदोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाईयों के उदय को नया बल प्रदान किया। . . . नीची जाति के समान है, इस आंदोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया, . . . संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।”<sup>3</sup>

भक्ति आंदोलन का समय संघर्ष, मानवीय अस्मिता स्थापित करने का काल रहा है। भक्तिकाल पूर्णतः मानवीय मूल्यों को स्थापित कर अग्रसर होता रहा है, जिसमें कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे सुप्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की वाणी देश के कोने-कोने में फैली थी जिसे हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इन कवियों ने मानवीय मूल्यों के रूप में प्रेम की महत्ता स्वीकार की। इस संदर्भ में डॉ० देवीशंकर अवस्थी का कहना है कि – “यहाँ पर शर्त केवल एक रह जाती है – प्रेम। जैसे भी हो प्रेम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भक्ति काल का कुछ भी काम्य नहीं रह जाता। जप, तप, तीर्थ, वर्त, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य सब इसी ओर उन्मुख है आदर्श है – ‘रीझि भजो या खिझी।’ प्रेम ही मुक्ति प्राप्ति का एक साधन था तथा प्रेम के द्वारा ही ऊँच-नीच तथा जाति-पाति का भेद मिटाया जा सकता था। भक्ति आंदोलन का ध्येय न केवल आध्यात्मिक उन्नति था वरन् सामाजिक उत्थान भी था”।<sup>4</sup>

हिंदी साहित्य का भक्ति काव्य भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के उत्कर्ष का काव्य है। इस भक्ति की आध्यात्मिक चिंता वर्ग एवं जाति भेद रहित मानव जाति के लिए उच्चतम मानवीय शुभ मूल्यों की प्रतिष्ठा रही है। भक्तिकालीन काव्य मानवीय मूल्यों को आत्मसात किये अग्रसर होता है। इस काल के कवियों ने सदैव जाति-पाँति, भेद-भाव, धर्म, संप्रदाय से विलग होकर अपनी एक अलग राह बनायी। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने में तुलसीदास का प्रमुख स्थान रहा है। तुलसीदास हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकालीन रचनाकारों में सर्वाधिक चर्चित और सर्वाधिक विवादित कवि है। रामभक्ति-धारा के प्रमुख कवियों में तुलसी का स्थान प्रमुख है। तुलसी के समय का समाज उनके काव्यों में स्पष्टतः विवेचित हुआ है। तुलसी की प्रमाणिक बारह कृतियों में मानवीय मूल्यों विषयक मान्यताएँ विशेषतः ‘रामचरितमानस’ एवं ‘कवितावली’ में ही मिलती है, किंतु विशेष रूप से ‘रामचरितमानस’ में।

तुलसीदास की वाणी मानसभूमि की संतृप्ति करने वाली है। उनकी वाणी की धारा सर्वजन हिताय है। उनकी कृतियों में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में परिवार, राष्ट्र, जातिगत, समुदायगत, वर्गगत, लिंगगत आदि का स्थान प्रमुख है। तुलसीदास के यहाँ समाज के अनेक तत्व विद्यमान हैं। तुलसी कृत ‘रामचरितमानस’ में राम का समय उदात्त मानवीय एवं आदर्शवादी जीवन मूल्यों का समाज है। उनके समाज में जाति वर्ण भेद का कोई स्थान नहीं है, उनका कहना है कि –

“जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।

भगति हीन नर सोहई कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।”<sup>5</sup>

तुलसी का लोकमंगल का आदर्श बहुजन हिताय न था, सर्वजनहिताय था। इसके लिए रामयश को वे सर्वोत्तम मानते थे, वे कहते ही हैं –

“रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहू।

सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषी बड़ लाहू।”<sup>7</sup>

भक्तिकाल के कवियों में मानवता से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। उस मानवता में विषमता नहीं है, वैषम्य नहीं है (न जातिगत, वैषम्य, न धर्मगत वैषम्य, न वर्गगत वैषम्य, न संप्रदायगत वैषम्य)। इसलिए तो कबीर, सूर, तुलसी, जायसी को एक ही पंक्ति में स्थान प्राप्त हुआ। तुलसीदास जिनकी रचना का दायरा समूचे मानव जीवन तक, समूचे समाज तक व्याप्त है, वो मनुष्य की श्रेष्ठता एवं उसकी गरिमा की व्याख्या रामचरित मानस में स्थल-स्थल पर व्यंजित करते हैं –

“बड़े भाग मानुस तन पाया। सूर दुर्लभ सब ग्रथन्ह गावा

नर तन सम नहीं कवनिउ देहि। जीव चराचर जांचत जेहि।”7

तुलसी साहित्य एक ओर आत्मानिवेदन और विनय का साहित्य है, वही दूसरी ओर वह प्रतिरोध का साहित्य भी है। रामविलास शर्मा का मानना है कि – “हमारे समाज पर गोस्वामी तुलसीदास का इतना गहरा प्रभाव है कि आज यह कल्पना करना कठिन है कि तुलसीदास ने अनेक प्रचलित मान्यताएँ अस्वीकार करके यह साहित्य रचा था। वे आत्म-त्याग करने वाले को सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मानते हैं। भक्त के पास अपना कुछ नहीं होता इसलिए ‘राम ते अधिक राम कर दासा।”8

तुलसी की भक्ति भावना मानवीय चेतना से संपृक्त है। उनका भक्ति का मार्ग सामाजिक दर्शन पर आधारित है और उनकी भक्ति में मानवीय सहानुभूति और करुणा का स्वर मुखर है। तुलसी जन-साधारण को कर्म क्षेत्र में निरंतर संघर्ष करते हुए दुष्प्रवृत्तियों का दमन करके परलोक के साथ इहलोक को भी समुन्नत बनाने का परामर्श देते हैं –

“जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

बंदउ सबके पर कमल सदा जोरी जुग पानी।”9

भक्तिकाल के कवियों ने सदैव से धार्मिक कर्मकाण्ड, आडम्बर, जाति-पाँति, छुआ-छूत, भेद-भाव आदि का खण्डन किया है। तुलसीदास अपनी प्रतिष्ठित रचना ‘रामचरित मानस’ में निषाद, शबरी आदि के माध्यम द्वारा जाति प्रथा को नकारते हैं और केवल भक्ति करने वाले के लिए ‘राम’ की सहज उपलब्धता को स्वीकार करते हैं। शबरी एक नीची जाति की होते हुए भी उसे भी भगवान का सान्निध्य प्राप्त होता है तथा जाति के स्थान पर भक्ति की महत्ता को स्वीकार करते हैं –

“राम सखा रिषी बरबर भेंटा। जनु-महिलूठत सनेह समेटा।”10

तुलसी दास एक स्थान पर ‘राम का समाज’ द्वारा उच्चस्तरीय मानवीय मूल्य एवं त्यागवादी संस्कृति का परिचय देते हैं तो दूसरे स्थान पर ‘रावण का समाज’ द्वारा वर्चस्वशाली, आसुर संस्कृति, साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं और खण्डित यथार्थवादी जीवन मूल्यों को रावण और विभीषण दोनों भाइयों के संबंध पर दृष्टिगत होता है जिसमें विभीषण अपने भाई के हित के लिए सीता को लौटाने के लिए रावण को समझाता है, तथा रावण स्वार्थान्ध होकर विभीषण पर शत्रुवत प्रहार करता है, इसे तुलसी ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

“बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही विभीषण नीति बखानी।

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।

जियासि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ तोहि भावा।।

असि कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।”11

तुलसी दास के उत्तरकाण्ड में राजा का प्रजा के प्रति समतामूलक दृष्टि देखने योग्य मिलती है –

“परिघट परम मनोहर जाना। तहां ज पुरुष करहिं अस्नाना।

राजघाट सब विधि सुन्दर बारा। मज्जहिं ठहा बरन चारिऊ नरा।”12

अतः इसका तात्पर्य यह है कि सरयू नदी के तट पर अनेक घाट थे जिसमें पानी पीने का घाट अलग था वहाँ कोई स्नान नहीं करता था, किंतु जो राजपुरुषों के स्नान का घाट था वहाँ चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लोग स्नान करते थे। यहाँ एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है – “आधुनिक युग के यथार्थवादी रचनाकार प्रेमचंद ने ‘ठाकुर का कुआँ’ कहानी में सवर्णों के कुएँ से शूद्रों द्वारा पेयजल न ले पाने की कथा कही है और तुलसी ने तो रामराज्य में ‘स्नान’ का चित्रण किया है, पाँच सौ वर्ष पूर्व?”<sup>13</sup>

**निष्कर्षतः** यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने राम के साम्राज्य, उस समय परिस्थिति को केन्द्र में रखकर समन्वय, समतामूलक समाज की परिकल्पना की है। भूमण्डलीकरण, मशीनीकरण के दौर में मनुष्य अपनी नैतिक मान्यताओं, मूल्यों, संस्कारों को खोते जा रहा है। ऐसे में तुलसी द्वारा रचित ‘रामचरित मानस’ आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है, जिसने मानवीय मूल्यों के प्रतिपादन में अपना अमूल्य योगदान दिया। आज के इस दौर में विसंगतियाँ, कुण्ठा, द्वेष, हिंसा की भावना अपने चरमोत्कर्ष पर है ऐसे में तुलसी द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों की आवश्यकता प्रतीत होती है। वर्तमान समय में परिवार और सत्ता समाज के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। पारिवारिक विघटन से ‘मूल्य’, ‘संस्कार’ खत्म हो रहे हैं। सत्ता प्रणाली से सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे समय में तुलसी वर्णित ‘उच्च मानवीय मूल्यों’ से युक्त राम के समाज की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, बीसवाँ पुनर्मुद्रण संवत् 2040, पृष्ठ सं.-43
2. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, छठी आवृत्ति-2006, राजकमल प्रकाशन, पृ.-58
3. मिश्र, शिवकुमार, भक्तिकाव्य और लोकजीवन, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1983, पृ.-5
4. अवस्थी, देवीशंकर, भक्ति का संदर्भ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सन्-2005, पृ.-35
5. मानस, 3/35/45
6. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद आचार्य, गोसाईं तुलसीदास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, वि.-2022, पृ.-25
7. रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तरकाण्ड, 42/4/43, सन्-2007, पृ.-873
8. संपादक, सिंह सुधा, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम सं.-2004, पृ.-336
9. रामचरित मानस, बालकाण्ड, दोहा सं. 6 ग, सन् 2007, पृ.-10
10. मानस - 2/243/6-7
11. डॉ. पाण्डेय अर्चना ; समाज्ञा, संपादकीय, तुलसी का समाज-दर्शन ।